आजादी के नाम 77वां वर्षः एक विवेचना

*डॉ. भावना शर्मा

भारत देश का 77 वां स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 2023 को मनाया गया। 'आज़ादी के अमृत महोत्सव' का वर्ष पूरा हुआ। ब्रिटिश शासन ने करीब 250 सालों के शासन के बाद केवल डेढ़ सेकण्ड में 'भारत स्वतंत्रता' का बिल पारित कर दिया था। भारतीयों के लिए यह ऐतिहासिक दिन है। 15 अगस्त 1947 से ही भारत में स्वतंत्रता दिवस मनाने की परंपरा से शुरू हुई। इसलिए इस साल भारतवर्ष 77 वां आजादी दिवस मना रहा है। अंग्रेज मानते थे कि मौसम की समाप्ति पर डंठल में लगा फूल सूखकर झड़ जाता है, वैसे ही आजाद भारत भी सूखकर झड़ जाएगा। इतिहास गवाह है हम न सूखे न झड़े। उलटे दुनिया में जहां–जहाँ हम गए, वहां हम शक्तिमान हो गए हैं। गीता में लिखा है कि जब जब देश में राजनीति का क्षय होगा, तब तब कोई चक्रवर्ती अवतार लेकर राज्य की पुर्नस्थापना करेगा। इसलिए भारत का इतिहास सदियों की प्रतीक्षा का इतिहास है। वेद पुराण और दंतकथाएं इस देश का जातीय संविधान है।

भारत में अंग्रेजों से उधार लिए लोकतंत्र की दिक्कतें कम नहीं रहीं हैं, 1975 तक राज इस तरह चल रहा था, जैसे रॉल्सरॉयस कार में घाँसलेट डालकर गाड़ी चलाने की चेष्टा की जा रही हो, 1977 के बाद स्थिति फिर वैसी ही हो गई, गाड़ी धुआँ देती है। रुकती है। बिगड़ती है। टकराती है। क्योंकि वह देशी ईंधन से चल रही है और अपने लिए कोई देशी घाँसलेटी वाहन ईजाद करने में हम असफल रहे। एप्रोप्रिएट टेक्नोलॉजी का हम सब समर्थन करते हैं, लेकिन क्या कोई एप्रोप्रिएट पॉलिटिक्स की खोज देश कर रहा है? आज देश की राजनीति में एक आदमी और संस्था का संघर्ष चल रहा है, जो जनता को स्वशासन का तंत्र गढ़ने की बात कह रहा है। इन दिनों जो है वह पूंजीवाद के पतन की निशानी नहीं है। अगर हर व्यापारी कपड़ा नापने के लिए अपना खुद का गज़ बनाये , तब कपड़ा बाजार की जो हालत होगी, वही हालत आज मुद्रा बाज़ार की है। आदमी और मुद्रा संस्थाओं के इस संघर्ष विमर्श के बाद शायद कोई नया राष्ट्रीय मुद्रागज़ कालांतर में बनेगा। बैल जब खेत चरता है तो उसे पूंजीवाद कह सकतें हैं, लेकिन टिड्डीदल जब फसल पर उतरता है, तो वह प्रजातांत्रिक समाजवाद बन जाता है, बैल का नियंत्रण आसान है, टिड्डीदल का असंभव। भारत की जनता सरकारी पूंजी का टिड्डीकरण चाहती है। उन्हें तो खुला खेत चाहिए।

भारत के प्रति अपनी नीति तय करते समय हर देश पहले यह पूछता है कि भारत का अंदरूनी भविष्य क्या है? क्या भारत अराजकता में बिखर जाएगा? या महान देश बनेगा? या नो चेंज। जैसा है वैसा ही यथास्थिति में बरसों तक बना रहेगा? लेकिन क्या भारत ने अपनी नीति तय करते समय कभी यह सोचा है कि दस वर्ष बाद रूस का, चीन का या अमेरिका का अंदरूनी भविष्य क्या होगा ? भारत में राष्ट्रीय स्तर पर लोकतंत्र ख़ासा मज़बूत हुआ है, लेकिन अलोकतांत्रिक व्यवहार और हिंसा अभी भी नज़र आती है। भारत एक बहुत ही असाधारण लोकतंत्र है जिसकी कुछ बहुत ही मज़बूत लोकतांत्रिक विशेषताएँ हैं और कुछ बहुत ही अलोकतांत्रिक विशेषताएँ भी हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ–साथ तमाम तरह की मुश्किलें ही आज़ाद भारत को एक असाधारण लोकतंत्र बनाती हैं।

उपलब्धियों की बात करें तो यही लोकतांत्रिक ढाँचा है जिसने 'सेफ़्टी वॉल्व' का काम किया है और कभी–कभी असल मुद्दे भी सलुझाए हैं। नहीं तो भारत जैसा बड़ा और इतनी असमानताओं वाला देश भला अविभाजित कैसे रह सकता था? भारत में लोकतांत्रिक परंपरा दूर–दूर तक फैल रही है और उसकी जड़ें और गहरी हो रही है। देखा गया है कि चुनावों में संपन्न वर्ग के मुकाबले, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग ज़्यादा बढ़–चढ़कर भाग लेते हैं। दूसरी ओर विकसित देशों में उपेक्षित वर्ग मतदान में ज़्यादा संख्या में भाग नहीं लेता क्योंकि उसे चुनाव में भाग लेने का कोई ख़ास मक़सद नज़र नहीं आता। अब सवाल उठता है कि क्या अपनी स्थिति सुधारने के लिए सामाजिक या आर्थिक रूप से पिछड़ गए वर्ग की लोकतांत्रिक व्यवस्था में पूरी आस्था है?

ये आस्था का सवाल कम है। असल बात ये है कि वे इस व्यवस्था को ज़रूरी मानते हैं लेकिन काफ़ी नहीं। उन्हें लगता है कि इससे उनकी मदद होती है और इसका इस्तेमाल करना चाहिए, फिर चाहे ये पर्याप्त न हो। आज़ादी के बाद के 20–25 साल में मज़दूरों और किसानों के संघर्ष, यानी आर्थिक मुद्दो पर आंदोलन ज़रुर हुए थे। लेकिन इसके बाद सांस्कृतिक मुद्दों पर असंतोष, आर्थिक असंतोष से ज़्यादा देखा गया है।

विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास के लिहाज़ से फ़र्क तो रहा है लेकिन जनांदोलन सामाजिक–सांस्कृतिक मुद्दों पर रहे हैं। इसका ये मतलब नहीं है कि आर्थिक असंतोष रहा ही नहीं, लेकिन अब आर्थिक मुद्दों पर लोगों को एकजुट करना ख़ासा मुश्किल हो गया है।

भारतीय लोकतंत्र की असफलताओं की बात करें तो 1990 के दशक से लेकर अब तक लोकतांत्रिक व्यवस्था में अनिश्चितता बढ़ गई है। यदि लोकतांत्रिक राजनीति के पाँच मुख्य पड़ावों की बात करें तो पहला – आपातकाल का लागू किया जाना और उतना ही महत्वपूर्ण, फिर उसका न दोहराया जाना। दूसरा–मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करना यानी पिछड़ों को और अधिकार दिलाने का प्रयास। आज़ाद भारत के लोकतांत्रिक सफ़र का तीसरा मुख्य पड़ाव था बाबरी मस्जिद विध्वंस और चौथा था वर्ष 1998 के पोखरण धमाके और पाँचवाँ मुख्य पड़ाव 2014 में पिछड़े वर्ग से आये नरेंद्र मोदी की अगुवाई में केंद्र में बनी सरकार। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अगुवाई में गैर कांग्रेस सरकार ने न केवल पांच साल पूरे किए बल्कि अगले पांच साल फिर से रिपीट हो गए –

ये सब मुख्य पड़ाव हैं। इनमें लोकतांत्रिक तथा हिंसा का पहलू रहा है। ये सब घटनाएँ इस बात का भी संकेत हैं कि भारत के उच्च वर्ग का किरदार किस तरह बदल रहा है। भारतीय लोकतंत्र असल में 'आप पर कौन शासन करेगा, 'इसकी प्रतिस्पर्धा है। ये उस लिहाज़ से लोगों के सशक्तिकरण की प्रक्रिया कम है। लेकिन राज्यों के स्तर पर लोगों के पास काफ़ी विकल्प हैं जो एक सकारात्मक बात है।

संसद में 28 अलग–अलग राजनीतिक दल हैं और पार्टियों की नीतियों में फ़र्क देंखे तो वह भी ख़ासा है। अमरीका या ब्रिटेन में तो लोगों के पास विकल्प बहुत सीमित हैं।

आज के भारतीय लोकतंत्र और भविष्य के भारत की रचना में कौन सी ताक़तों की मुख्य भूमिका है? इस संदर्भ में सबसे पहली ताकत है, धीमी गति से लेकिन लगातार बढ़ रहा हिंदुत्व जिसका प्रभाव केवल चुनावों में ही नहीं, बल्कि समाजिक रिश्तों पर भी दिख रहा है। दूसरी बड़ी ताक़त है पिछड़े वर्ग का अपने अधिकारों के लिए दबाव बनाना। तीसरी ताक़त है दलितों का अपने अधिकारों और सत्ता में भागीदारी के लिए सक्रिय होना। चौथा प्रभाव है मुसलमानों का पारंपरिक नेतृत्व के साथ असंतुष्ट होना, महिलाओं के अधिकार और समुदाय के सदस्यों को शिक्षित करने और रोज़गार दिलाने का प्रश्न। इसके साथ ही यह समुदाय इस अहम सवाल का सामना कर रहा है कि 'हम कहाँ जा रहे हैं? 'अन्य मुख्य पहलू हैं भारतीय राजनीतिक का क्षेत्रीयकरण और भारत के तथाकथित मध्यवर्ग का आगे बढ़ना। तथाकथित इसलिए क्योंकि ये मध्यवर्ग देश का लगभग 30–35 प्रतिशत उच्च और प्रभावशाली वर्ग है ।

इन प्रभावों का मिश्रण और एक–दूसरे पर हावी होना वह पेचीदा तस्वीर पैदा करता है जिससे वर्तमान और भविष्य के महान भारत की रचना होगी।

भारत में लोकतंत्र की जड़ें पड़ोसी देशों के मुक़ाबले में मज़बूत क्यों हैं ? इसका कोई एक मुख्य कारण नहीं है, इसके कई कारण हैं। आज़ादी के बाद के 20–25 साल में राष्ट्रीय राजनीति पर कांग्रेस का प्रभुत्व रहा। कई मायने में कांग्रेस आज़ादी से पहले ही इस 'रोल' के लिए तैयार थी और प्रशासकीय भूमिका निभा रही थी। ये चाहे सतही तौर पर उस समय की भारतीय राजनीति का अलोकतांत्रिक पहलू प्रतीत हो, लेकिन उस समय कांग्रेस में कई धड़े थे जो अलग–अलग विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते थे। जब कांग्रेस का प्रभुत्व कम हुआ तो पहले ये राज्यों में हुआ। वहाँ आपस में मुक़ाबला करती काफ़ी हद तक स्थिर, दो–पार्टी या तीन–पार्टियों की व्यवस्था कायम हुई। इसके बाद ही राष्ट्रीय स्तर पर कई पार्टियाँ सामने आईं। राष्ट्रीय स्तर पर दो ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने भारत की एकता को बल दिया। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन और राष्ट्रीय चुनावों को प्रांतीय चुनावों से अलग करना। भाषा के आधार पर राज्यों के बनने से शायद उर्दू को छोड़कर बाक़ी सभी भाषाओं का विकास हुआ और राज्यों में लोगों की पहचान मज़बूत हुई। अगर भाषा के आधार पर राज्य न बनते तो काफ़ी मुश्किलें हो सकती थीं। इसके अलावा, राष्ट्रीय चुनावों को राज्यों के चुनावों से अलग कर दिए जाने से क्षेत्रीय पार्टियों को बल मिला और राज्यों के लोगों को अपने मुद्दे उठाना और उनकी ओर ध्यान आकर्षित करना आसान हो गया।

इन दिनों नेता, जनता और समीक्षक जाँच कर रहे हैं कि नरेंद्र मोदी लोकतांत्रिक समाजवादी हैं या नहीं ? भारत की जनता के मन में समाजवाद की बड़ी सरल परीभाषा है। जो सरकार अमीरों पर टेक्स लगाए और ग़रीबों को राहत दे, वह समाजवादी है। बड़ी अच्छी परिभाषा है। तात्पर्य यह है कि जिस दिन अमीरों का समूचा उन्मूलन होगा, उसके दूसरे दिन समाजवाद आ जाएगा, और अगर सरकार अमीरों का उन्मूलन नहीं कर रही है, तो इसका कारण यह है कि वह पैसेवालों के शिकंजे में बुरी तरह फँसी हुई है । समाजवाद का पाठ पिछले 76 साल से करने के बाद भी आज स्थिति यह है कि भारत के लोग उसे कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं समझते, अर्थतंत्र नहीं समझते । वे उसे सीधा सादा राम–रावण युध्द समझते हैं। जो स्थापित राजनीतिक हालात में ही सफल हो सकता है। मूल बात यह है कि प्रजातंत्र के साथ अर्थतंत्र अनिवार्यतःरू जुड़ा हुआ है। प्रजातंत्र एक ऐसी प्रणाली है जो बांधती नहीं, बिखेरती है। वह लोगों को गैर जिम्मेदार बनाती है और केवल अधिकार मांगना सिखाती है। जो सरकार प्रजातंत्र के सिद्धान्तों से चलती है, वह जनता को रेवड़ी बांटे बिना नहीं टिक सकती, भले ही रेवड़ियां कम हों और उन्हें खाने से नुकसान होता हो। जनता से कुर्बानी और खून पसीना लेने की उसमें

कोई ताकत नहीं होती। यह ताकत पूंजीवाद में है। इसलिए प्रजातंत्र चलता ही तब है, जब वह संपत्ति

वाद से जुड़ा हो। प्रजातंत्रीय समाजवाद एक ऐसा तंत्र है, जिसमें सरकार अपने लोगों को देने ही देने का वादा करती है, लेकिन वह जनता से लेती कुछ भी नहीं। क्या ऐसा चल सकता है ? क्या सरकार के पास कामधेनु है, कल्पवृक्ष है ? कारूँ का खजाना है ? या सरकार शासन–संन्यास ले ले।

लोकतंत्र में राज करना उतना ही कठिन है जितना कि हरम में ब्रह्मचर्य का निर्वाह करना। जैसे कोई ऋषी स्वयं सुन्दरतम अप्सराओं को बुलाकर नृत्य का निर्देश दे, और उनके बीच आँखें मूँद कर तपस्या करने बैठ जाए, अतरू लोकतंत्र में दम साध कर राज करना कठिन है। साधना कठिन होते हुए भी लोकतान्त्रिक प्राणायाम भारत को क्यों रास आ रहा है? इसका कारण यह है कि लोकतंत्र अरा की ताकतों के बीच राज कायम करने की चेष्टा करता है। 1947 के बाद से भारत जिस खोज में जुटा हुआ है, वही चीज भारत को लोकतंत्र के लायक बनाती है। इससे आज़ाद भारत में लोकतंत्र मज़बूत हुआ है, और भारत एक महाशक्ति के साथ–साथ एक महान भारत भी बन रहा है।

***एसोसिएट प्रोफेसर**
पोस्टग्रेजुएट सेंटर–राजनीति विज्ञान विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला